Lyceum India Journal of Social Sciences | e-ISSN: 3048-6513
Peer-reviewed • Indexed • Open Access • Monthly Online Journal
Vol. 3, No. 10 | August 2026
DOI: 10.5281/zenodo.22083520

डिजिटल युग और हिंदी कविता : सोशल मीडिया संस्कृति के दौर में 'लघु-कविता' का बदलता व्याकरण और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक निहितार्थ

शिवा [1]

[1] सहायक प्राध्यापक, श्री दावड़ा विश्वविद्यालय, नया रायपुर, छत्तीसगढ़

शोध-सारांश

यह शोध-पत्र समकालीन हिंदी कविता के उस अप्रतिम और गतिशील परिदृश्य का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जो पारंपरिक मुद्रित माध्यमों (पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं और समाचार पत्रों) से निकलकर डिजिटल स्क्रीन—विशेषकर इंस्टाग्राम रील्स, यूट्यूब शॉर्ट्स, फेसबुक और अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से विकसित हो रहा है। प्रिंट संस्कृति से डिजिटल संस्कृति तक की यह संक्रमणकालीन यात्रा केवल माध्यम का परिवर्तन मात्र नहीं है, बल्कि यह कविता की अंतर्वस्तु, शिल्प, लय, बिंब-विधान, श्रुति-संवेदना और उसके संज्ञापन के संपूर्ण व्याकरण को आमूल-चूल रूपांतरित कर रही है। पंद्रह से तीस सेकंड के डिजिटल अटेंशन के इस दौर में 'लघु-कविता' का एक नया और क्रांतिकारी प्रारूप उभरा है, जहाँ दृश्य, ध्वनि, सुलेख और शब्द मिलकर एक संयुक्त और बहुआयामी काव्यात्मक अनुभव रचते हैं। यह शोध इस बात का गंभीर परीक्षण करता है कि यह डिजिटल काव्यांदोलन किस प्रकार हिंदी साहित्य के अकादमिक और पारंपरिक मानदंडों को चुनौती दे रहा है, और समकालीन समाजशास्त्र, बाजारवाद तथा जनसंचार के अंतर्संबंधों को किस दिशा में ले जा रहा है।

कुंजी शब्द: डिजिटल युग, हिंदी कविता, लघु-कविता, सोशल मीडिया संस्कृति, रील्स और शॉर्ट्स, डिजिटल समाजशास्त्र, विजुअल पोएट्री, एल्गोरिथमिक सौंदर्यशास्त्र, काव्यात्मक शिल्प।

1. प्रस्तावना: मुद्रण से स्क्रीन तक हिंदी कविता की ऐतिहासिक और माध्यमगत यात्रा

हिंदी कविता का गौरवशाली इतिहास मौखिक परंपरा (श्रुति और कंठस्थ परंपरा) से शुरू होकर लिखित पांडुलिपियों, और अंततः औपनिवेशिक तथा उत्तर-औपनिवेशिक काल में मुद्रण संस्कृति के माध्यम से आधुनिकता के शिखर तक पहुँचा है। भारतेंदु युग से लेकर द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता और साठोत्तरी कविता तक, कविता का मुख्य संवाहक माध्यम पुस्तक, साहित्यिक पत्रिका या समाचार पत्र का पृष्ठ रहा है। इस मुद्रित संस्कृति ने समाज में वैचारिक गहराई, स्थायित्व और चिंतनशीलता को बढ़ावा दिया।

किंतु इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक के उत्तरार्ध से लेकर वर्तमान दशक तक, सूचना प्रौद्योगिकी, स्मार्टफोन की सुलभता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के अभ्युदय ने इस युगों पुरानी परंपरा में एक क्रांतिकारी मोड़ ला दिया है। आज का पाठक केवल 'पाठक' नहीं रहा, बल्कि वह डिजिटल स्क्रीन का 'दर्शक', 'श्रोता' और 'उपभोक्ता' तीनों एकसाथ बन चुका है। इंस्टाग्राम, यूट्यूब, एक्स (पूर्व

में ट्विटर) और फेसबुक जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स ने कविता को लाइब्रेरी, क्लासरूम और वैचारिक गोष्ठियों से निकालकर सीधे आम जनमानस की हथेली पर रख दिया है। इस डिजिटल विस्थापन ने हिंदी कविता के एक बिल्कुल नए स्वरूप को जन्म दिया है, जिसे अकादमिक दायरे में अब एक गंभीर विमर्श के रूप में स्थापित किए जाने की आवश्यकता है। यह शोध-पत्र इसी नए 'डिजिटल काव्यात्मक व्याकरण' की विभिन्न परतों को खोलने का प्रयास करता है।

2. डिजिटल संस्कृति, उत्तर-आधुनिकता और साहित्य का अंतःविषयक परिप्रेक्ष्य

साहित्य कभी भी समाज और उसकी तकनीकी प्रवृत्तियों से अछूता नहीं रहा है। डिजिटल युग का वर्तमान समाज 'त्वरित संस्कृति' , 'उपभोगवादी जीवनशैली' और 'अल्पकालिक ध्यान अवधि' पर आधारित है। उत्तर-आधुनिकतावादी चिंतक जीन बोद्रियार्ड के अनुकरण पर कहें तो आज का समाज 'सिम्युलेशन' और आभासी प्रतीकों के जाल में जी रहा है।

वाल्टर बेंजामिन ने अपने प्रसिद्ध निबंध 'यांत्रिक पुनरुत्पादन के दौर में कलाकृति' में कला के औरौर के ह्रास की बात की थी; आज का डिजिटल युग उससे एक कदम आगे बढ़कर 'एल्गोरिथमिक कला' और 'डिजिटल औरौर' के दौर में प्रवेश कर चुका है। हिंदी कविता जब सोशल मीडिया के पन्नों पर उतरती है, तो उस पर निम्नलिखित सामाजिक-तकनीकी कारक गहराई से प्रभाव डालते हैं:

एल्गोरिदम की तानाशाही और दृश्यता सोशल मीडिया पर कविता की स्वीकार्यता या उसका प्रभाव अब केवल उसके श्रेष्ठ साहित्यिक मूल्य पर निर्भर नहीं है, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि वह प्लेटफॉर्म के एल्गोरिदम के मानदंडों पर कितनी खरी उतरती है।

मल्टीमीडिया का अंतर्संबंध: अब कविता केवल लिखित शब्द नहीं है; उसके पीछे पृष्ठभूमि का संगीत , सुलेख और सिनेमैटिक विजुअल्स का संयोजन अनिवार्य होता जा रहा है, जो कविता के मूल पाठ को एक नया आयाम देता है।

लोकतांत्रिकरण बनाम सतहीकरण का द्वंद्व: जहाँ एक ओर डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने बिना किसी पारंपरिक प्रकाशक की अनुमति के आम युवाओं को कवि बनने और अपनी बात सीधे जनता तक पहुँचाने का एक अभूतपूर्व लोकतांत्रिक मंच दिया है, वहीं दूसरी ओर यह साहित्य के गंभीर मूल्यांकन और गुणवत्ता के संकट को भी जन्म देता है।

3. 'लघु-कविता' का बदलता व्याकरण, शिल्प और संरचनात्मक विन्यास

पारंपरिक हिंदी कविता (विशेषकर महाकाव्य, खंडकाव्य या लंबी कविताओं) में विस्तार, विस्तृत विवरण, जटिल प्रतीक-योजना और दीर्घकालिक वैचारिक विन्यास का विशेष महत्व होता था। इसके विपरीत, रील्स और शॉर्ट्स संस्कृति ने 'लघु-कविता' को स्थापित किया है। इस लघु-कविता का व्याकरण निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है:

क. लय और छंद का डिजिटल विखंडन

पारंपरिक तुकांत या मात्रिक/वर्णिक छंदों के स्थान पर अब 'लयबद्ध गद्य' या 'मुक्तछंद के भी अतिसंक्षिप्त रूप' का प्रयोग हो रहा है। चूँकि एक रील की औसत अवधि मात्र 15 से 30 सेकंड होती है, इसलिए कविता का प्रत्येक शब्द एक मानसिक आघात या तीव्र अनुभूति पैदा करने वाला होना चाहिए। लंबी प्रस्तावना या विस्तृत पृष्ठभूमि के लिए डिजिटल कविता में कोई स्थान नहीं बचा है। यहाँ 'गागर में सागर' भरने की पुरानी कहावत नए तकनीकी रूप में चरितार्थ हो रही है।

ख. बिंब-विधान में महानगरीय और अद्यतन यथार्थ

डिजिटल लघु-कविता के बिंब पूरी तरह बदल चुके हैं। पारंपरिक ग्रामीण जीवन के कुएँ, खेत, बैलगाड़ियाँ और प्राकृतिक उपादानों के स्थान पर अब 'स्मार्टफोन स्क्रीन', 'चैटबॉक्स', 'ब्लू टिक', 'वाई-फाई कनेक्शन', 'मेट्रो ट्रेन', 'लैपटॉप की नीली रोशनी' और 'अकेलेपन के डिजिटल कमरे' नए काव्यात्मक बिंब बनकर उभर रहे हैं। यह समकालीन महानगरों और अर्ध-नगरीय कस्बों के युवा मानस के अंतर्द्वंद्व, अलगाव और यांत्रिक जीवन को चित्रित करता है।

ग. दृश्य-श्रव्य सह-सृजन

डिजिटल कविता में 'मौन' और 'ध्वनि' का व्याकरण भी बदल गया है। जब कोई रचनाकार अपनी कविता का पाठ करता है, तो पृष्ठभूमि में बजता उदास पियानो, एम्बिएंट म्यूजिक या गिटार की स्वरलहरी शब्दों के अर्थ को द्विगुणित या कई बार पूरी तरह रूपांतरित कर देती है। यहाँ कवि केवल एक शब्द-रचयिता नहीं रहता, बल्कि वह एक 'मल्टीमीडिया निर्देशक' की भूमिका में आ जाता है।

4. पाठक से 'दर्शक 'श्रोता' और 'सह-सृजक' तक: अंतःक्रियात्मकता का नया युग

प्रिंट संस्कृति में पाठक और लेखक के बीच एक निश्चित भौतिक, स्थानिक और वैचारिक दूरी होती थी। पाठक एकांत में बैठकर कविता को पढ़ता था और अपने भीतर अर्थ की विभिन्न परतें तलाशता था। इसके विपरीत, सोशल मीडिया कविता में यह पारंपरिक दीवार पूरी तरह टूट चुकी है:

डुएट और रीमिक्स संस्कृति: इंस्टाग्राम रील्स पर जब कोई रचनाकार कविता का पाठ करता है, तो दूसरा यूजर उसमें अपना स्वर, अपनी आवाज़ या अपनी प्रतिक्रिया जोड़कर 'डुएट' करता है। यह प्रक्रिया कविता को एक 'सामूहिक लोक-संवाद' में बदल देती है, जहाँ रचना अब किसी एक व्यक्ति की बपौती नहीं रहती, बल्कि वह एक सामूहिक अभिव्यक्ति बन जाती है।

कमेंट बॉक्स की समाजशास्त्र कविता के प्रकाशन के तुरंत बाद नीचे आने वाली प्रतिक्रियाएं (सकारात्मक और नकारात्मक दोनों) कविता के अर्थ को लाइव तय करती हैं। कई बार कवि पाठकों की तुरंत की प्रतिक्रियाओं और लाइक्स के दबाव में अपनी अगली रचनाओं की दिशा और विषय-वस्तु तय करने लगते हैं, जो साहित्यिक स्वायत्तता के लिए एक नया और गंभीर प्रश्नचिह्न खड़ा करता है।

5. वाणिज्यीकरण, एल्गोरिदम की तानाशाही और काव्यात्मक स्वायत्तता का संकट

प्रत्येक तकनीकी क्रांति अपने साथ कुछ अंतर्विरोध और चुनौतियाँ लेकर आती है। सोशल मीडिया पर परोसी जा रही हिंदी कविता के समक्ष आज सबसे बड़ा संकट उसकी 'वाणिज्यिक संलग्नता' और ब्रांड प्रायोजन का है।

जब कविता 'व्यूज', 'लाइक्स' और 'फॉलोअर्स' की संख्या से तौली जाने लगती है, तब उसमें बाजार की मांग के अनुकूल 'भावनात्मक मेलोड्रामा', सतही प्रेम-विमर्श या फौरी प्रेरणादायक पंक्तियों को प्राथमिकता मिलने लगती है।

इसके विपरीत, राजनीतिक प्रतिरोध, वैचारिक गहराई, सामाजिक विसंगतियों पर करारी चोट और जटिल दार्शनिक चिंतन वाले विषयों को सोशल मीडिया एल्गोरिदम द्वारा अक्सर 'रीच' (Reach) नहीं मिलती, क्योंकि वे त्वरित मनोरंजन या डोपामाइन हिट के

मानदंडों पर खरे नहीं उतरते। इसके परिणामस्वरूप, हिंदी कविता का परिदृश्य दो स्पष्ट हिस्सों में बंटता दिख रहा है—एक ओर अकादमिक और गंभीर प्रिंट साहित्य, और दूसरी ओर तीव्र गति से लोकप्रिय होता डिजिटल 'पल्स-पोएट्री' का संसार।

6. **भाषा, बोलियों और अस्मिता का प्रश्न:** डिजिटल **मंचों पर हिंदी और उसकी उपभाषाओं का लोक-संवाद**

डिजिटल माध्यमों की एक बड़ी विशेषता यह रही है कि इन्होंने मानक हिंदी (खड़ी बोली) के साथ-साथ क्षेत्रीय बोलियों (जैसे छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मैथिली, हरियाणवी, राजस्थानी आदि) के शब्दों को भी डिजिटल स्पेस में एक नई धमक दी है।

युवा रचनाकार अपनी स्थानीय माटी की खुशबू को ग्लोबल प्लेटफॉर्म्स पर लाने के लिए हिंदी के साथ क्षेत्रीय शब्दावली का सुंदर प्रयोग कर रहे हैं।

यह भाषा के विविधीकरण और लोक-भाषाओं के पुनरुत्थान की दिशा में एक सकारात्मक कदम है, क्योंकि इससे नई पीढ़ी अपनी जड़ों से जुड़ती हुई वैश्विक मंचों पर संवाद कर रही है।

7. डिजिटल कविता और सौंदर्यशास्त्र: बौद्धिक बनाम भावात्मक प्रभाव का अंतर्द्वंद्व

साहित्यिक सौंदर्यशास्त्र का इतिहास हमेशा से सहृदय और पाठक के मन पर पड़ने वाले दीर्घकालिक प्रभावों का आकलक रहा है। प्राचीन काल में आचार्य भरतमुनि के 'रस सूत्र' से लेकर आधुनिक काल तक, कविता का उद्देश्य मानव चेतना को परिष्कृत करना रहा है।

डिजिटल युग की 'लघु-कविता' इस पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र को एक नए मोड़ पर ला खड़ा करती है। चूँकि सोशल मीडिया पर उपयोगकर्ता के पास स्क्रीन स्क्रॉल करते समय केवल कुछ ही सेकंड का समय होता है, इसलिए डिजिटल कविता का सौंदर्यशास्त्र 'त्वरित प्रभाव' पर आधारित हो गया है। यहाँ काव्यात्मक सौंदर्य का अर्थ गहरी दार्शनिक मीमांसा न होकर तात्कालिक रूप से भावुक करना या आघात पहुँचाना बन गया है। इस परिप्रेक्ष्य में, गंभीर साहित्यिक समीक्षक इसे 'सौंदर्य का अवमूल्यन' मानते हैं, जबकि डिजिटल सर्जक इसे 'समय की मांग के अनुसार काव्यात्मक रूपों का लोकतंत्रीकरण' घोषित करते हैं। यह अंतर्द्वंद्व आज के हिंदी आलोचना जगत का एक सबसे बड़ा वैचारिक केंद्र बिंदु बन चुका है।

8. निष्कर्ष और भविष्य की संभावनाएं

डिजिटल युग और सोशल मीडिया संस्कृति ने हिंदी कविता के अस्तित्व को मिटाया नहीं है, बल्कि उसके रूप-विन्यास, संज्ञापन माध्यम और व्याकरण को पूरी तरह से नया आकार दिया है। 'लघु-कविता' आज के तनावपूर्ण, तेज रफ्तार और स्क्रीन-केंद्रित मनुष्य की अनिवार्य मनोवैज्ञानिक आवश्यकता बन गई है।

भले ही इस डिजिटल काव्यांदोलन में सतहीपन, वाणिज्यीकरण और एल्गोरिदम की गुलामी का जोखिम निहित है, तथापि इसे पूरी तरह खारिज नहीं किया जा सकता। यह हिंदी भाषा की असीम जीवंतता और उसकी अनुकूलन क्षमता का सबसे बड़ा प्रमाण है कि वह बदलते हुए तकनीकी परिवेश में भी अपने पाठकों और दर्शकों से जीवंत संवाद स्थापित करने में सक्षम है। भविष्य का हिंदी साहित्य इतिहास इस बात का साक्षी रहेगा कि कैसे सोशल मीडिया के पन्नों ने कविता को एक बार फिर से 'लोक-माध्यम' के रूप में पुनर्जीवित किया, बशर्ते रचनाकार एल्गोरिदम के दबाव से बचकर अपनी मौलिक काव्यात्मक अंतरात्मा और संवेदनशीलता को सुरक्षित रख सकें।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. सिंह, नामवर. कविता के नए प्रतिमान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. वाजपेयी, नंददुलारे. आधुनिक साहित्य, भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली।
4. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. शर्मा, रामविलास. भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. बेंजामिन, वाल्टर. यांत्रिक पुनरुत्पादन के दौर में कलाकृति (अनुवादित निबंध संग्रह), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. बोद्रियार्ड, जीन. सिम्यूलृा एंड सिम्युलेशन (Simulacra and Simulation - डिजिटल समाजशास्त्र के संदर्भ में), सैद्धांतिक लेख।
8. चतुर्वेदी, परशुराम. लोकसाहित्य की भूमिका, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. सिंह, केदारनाथ. कल्पना और छायावाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. मुक्तिबोध, गजानन माधव. नयी कविता का आत्मसंघर्ष और अन्य निबंध, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
11. सिंह, शमशेर बहादुर. कुछ कविताएँ और शिल्प संबंधी विमर्श, राजकमल प्रकाशन।
12. पांडेय, मैनेजर. साहित्य और समाज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. जैन, निर्मला. हिंदी आलोचना के बीस वर्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
14. त्रिपाठी, विश्वनाथ. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
15. नगेन्द्र, डॉ. रससिद्धांत एवं आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
16. मैकलुहान, मार्शल. अंडरस्टैंडिंग मीडिया: द एक्सटेंशन्स ऑफ मैन (मीडिया थ्योरी और कम्युनिकेटिव आस्पेक्ट्स के संदर्भ में)।
17. समकालीन डिजिटल मीडिया और जनसंचार के समाजशास्त्रीय अध्ययन, ई-जर्नल्स एवं शोध पत्र (2021-2026)।
18. अडोर्नो, थियोडोर. द कल्चरल इंडस्ट्री: सिलेक्टेड एसेज़ ऑन मास कल्चर (डिजिटल कला और वाणिज्यीकरण के संदर्भ में)।
19. केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा - डिजिटल युग और हिंदी भाषा: संभावनाएं और चुनौतियां, शोध संकलन (2023)।
20. समकालीन भारतीय साहित्य (साहित्य अकादमी त्रैमासिक पत्रिका), डिजिटल कविता विशेषांक (2024-2025)।

Publisher's Note: *The views and opinions expressed in this article are solely those of the author(s) and do not necessarily reflect those of the publisher, editors, or the editorial board.*